THE TIMES OF INDIA

Date: 10-11-16

Shock therapy

To target black money, demonetisation of high value notes must be supplemented by other measures

For the second time in four decades India has been subjected to shock treatment of overnight demonetisation of high value currency notes. Bank notes of Rs 500 and Rs 1,000 denominations stopped being legal tender yesterday, as part of a bold package of measures to combat counterfeit notes and black money held in form of cash. These sweeping measures will also be disruptive as India's large rural and informal economies are largely cash based. They show, however, that Prime Minister Narendra Modi is willing to take big political risks in pursuit of key goals.Demonetisation can be thought of as punishment for holders of black money and a temporary squeeze on counterfeiting. But if the disruption faced by the honest is to count it is important to get follow up steps right. Government must be able to capture data and establish a trail of possible tax evaders when millions begin to exchange old notes for new notes. Earlier efforts to use banks to establish a trail have not yielded satisfactory results. It is also important to acknowledge that a significant part of black money is not held as cash. Instead it shows up as assets of fictitious entities in the formal financial system.

A war on black money cannot be limited to demonetisation. For example, Modi should use his political capital to bring real estate within the ambit of GST. This will incentivise developers to seek tax credits and establish an audit trail. In addition, states who administer many land related transactions should be persuaded to lower high levels of stamp duty to encourage reporting of transactions. If this disruption of black money chains is to be effective, the scope of governmental action has to widen.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 10-11-16

सरकार का कदम साहसी मगर काले धन से निपटने में नाकाफी

सरकार ने 500 और 1,000 रुपये के करेंसी नोट को प्रचलन से बाहर कर दिया है। यह नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार द्वारा उठाए गए सबसे साहसिक कदमों में से एक है। सरकार ने यह कदम आय की स्वैच्छिक घोषणा संबंधी योजना पेश करने के दो महीने के भीतर उठाया है। उस वक्त लोगों को अवसर दिया गया था कि वे अपनी अघोषित संपत्ति की घोषणा करें और ऊंची दर पर कर चुकाकर उसे सार्वजनिक रूप से इस्तेमाल में ला सकें। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सरकार की काले धन से निपटने और उससे निजात पाने की नीति का ही हिस्सा है। हालांकि

इसे लेकर बहस हो सकती है कि यह कदम काले धन पर अंकुश लगा पाने में सक्षम होगा या नहीं? पांच ऐसी वजहें हैं जो स्पष्ट करती हैं कि आखिर क्यों सरकार का यह कदम अर्थव्यवस्था से भारी भरकम काले धन को अलग कर पाने में सफल नहीं होगा।

पहली बात, काला धन किसी भी अर्थव्यवस्था में संचय और संचालन दोनों रूप में मौजूद रहता है। काले धन का भंडार लोगों द्वारा बेनामी लेनदेन और कर वंचना से उत्पन्न होता है। वहीं अर्थव्यवस्था में संचालित काला धन ही वह प्रक्रिया है जिससे काला धन उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए काला धन तब पैदा होता है जब कोई नकद लेनदेन होता है लेकिन उसका कोई रिकॉर्ड नहीं रखा जाता या कोई कर नहीं चुकाया जाता। सरकार ने 500 और 1,000 रुपये के नोट बंद करने का जो निर्णय लिया है वह काले धन के भंडार को प्रभावित करेगा लेकिन इससे भविष्य में काला धन उत्पन्न होना नहीं रुकेगा। इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि लोग नई मुद्रा के आगमन के बाद उसकी मदद से बेनामी लेनदेन नहीं करेंगे। दूसरा, काले धन का उन्मूलन करने के लिए सरकार को कई तरह के कर बदलाव भी करने होंगे। रियायत की व्यवस्था को जल्दी समाप्त करना होगा। लेकिन प्रस्तावित वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को लेकर जिस तरह की परिस्थितियां बनी हैं उनमें तो कई क्षेत्र तो जीएसटी के दायरे के ही बाहर रह जाएंगे। यहां तक कि हाल ही में रियायतों को चरणबद्ध अंदाज में समाप्त करने का जो प्रयास किया गया और जिस तरह प्रत्यक्ष कर दरों को कम करने की कोशिश की गई वह भी अब तक कमजोर साबित हुई है।

तीसरा, चुनावों के लिए राजनीतिक दलों द्वारा लिए जाने वाले चंदे के क्षेत्र में भी सुधार लंबे समय से लंबित है। चुनाव प्रचार अभियानों में अक्सर तय सीमा से बहुत अधिक धन खर्च किया जाता है और इससे काला धन उत्पन्न होता है। फिलहाल चुनावी फंड के तौर तरीकों में सुधार की कोई संभावना भी नहीं नजर आ रही है। पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव अगले साल होने हैं। यह मानने की कोई वजह नहीं है कि इन चुनावों में हिस्सा ले रहे प्रत्याशी नकदी का प्रयोग नहीं करेंगे और उनके अधिकांश लेनदेन बेनामी नहीं होंगे। जाहिर है इससे और अधिक काला धन उत्पन्न होगा। चौथी बात, देश में होने वाले कुल लेनदेन में से 87 प्रतिशत में नकदी का इस्तेमाल होता है। जबकि चीन में यह आंकड़ा केवल 62 फीसदी है। प्लास्टिक मनी (क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड या पेमेंट वॉलेट) को बढ़ावा दिया जा रहा है लेकिन यह काम काफी धीमी गति से हो रहा है। अधिक से अधिक लेनदेन को नकदी रहित बनाने पर जोर दिया जाना चाहिए। जब तक इसके लिए कुछ नीतिगत पहल नहीं की जाती हैं तब तक लोगों की नकदी इकट्ठा करने और उसका इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति बरकरार रहेगी। दरअसल नकदी लेनदेन के बेनामी रहने और उनके काले धन में तब्दील हो जाने की अच्छी खासी आशंका रहती है। पांचवीं बात, ऐसा कोई उपाय नहीं है जो कई लोगों को 500 और 1,000 रुपये के पुराने नोट बैंकों में जमा करने से रोक सके। वे 30 प्रतिशत कर जमा करके ऐसा कर सकते हैं। ऐसे में काला धन रखने वालों के लिए यह अत्यंत आसान अवसर होगा कि कि वे बिना कोई जुर्माना चुकाए आसानी से काले धन को सफेद कर सकें। यकीनन आयकर अधिकारियों के पास ऐसे खुलासों का पता लगाने और नोटिस जारी करने का अवसर है। लेकिन वह भी काले धन का उत्पादन रोकने का प्रभावी और सुनिश्चित तरीका नहीं साबित हो सकता। ऐसे किसी तरीके के होने की उम्मीद के बीच काला धन सामने आना जारी रहेगा।

Date: 10-11-16

मोदी का 'ट्रंप' कार्ड

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की 500 और 1,000 रुपये के नोट का प्रचलन बंद करने की घोषणा निस्संदेह काले धन पर अब तक का सबसे साहसिक हमला है। ऐंबिट कैपिटल की वर्ष 2016 की रिपोर्ट के मुताबिक देश की अर्थव्यवस्था का पांचवां हिस्सा काले धन से आता है। मोदी ने कहा कि इस कदम का उद्देश्य भ्रष्टाचार , काले धन और नकली मुद्रा के रैकेट से निपटना है जो देश के विरुद्घ आतंकी गतिविधियों के वित्त पोषण के लिए इस्तेमाल में लाई जा रही है। उन्होंने देशवासियों से अपील की कि वे इस दौरान होने वाली अस्थायी दिक्कतों की अनदेखी करें। इस कदम

का स्वागत किया जाना चाहिए क्योंकि मोदी ने वर्ष 2014 के अपने चुनावी वादों में से एक प्रमुख वादे को पूरा करने की ओर निर्णायक कदम उठाया है। यह वादा है भ्रष्टाचार को कम करना और काले धन को सामने लाना। बहरहाल, सरकार को संभावित द्वितीयक प्रभावों की भी तैयारी रखनी होगी। ये आर्थिक सुधार को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं। अगर मान लिया जाए कि देश में 500 रुपये और 1,000 रुपये के नोटों का कुल मूल्य करीब 14 लाख करोड़ रुपये है और देश में 20-25 फीसदी काला धन है तो सरकार के इस कदम से करीब तीन लाख रुपये की रकम ही प्रणाली से बाहर होगी। ऐसे में कोई भी अनुमान लगा सकता है कि मार्च 2017 तक इसमें से कितनी रकम सरकार के कर राजस्व में इजाफा करेगी। बहरहाल अभियोजन के भय और भारी भरकम जुर्माने की आशंका से यह भी हो सकता है कि ढेर सारी रकम कभी सामने ही न आए। इस प्रकार परिसंपत्ति का नष्टïं होना जीडीपी पर भी थोड़ा असर डालेगा। लेकिन नकदी की आपूर्ति पर इसका अहम प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए अचल संपत्ति की कीमतों की बात करें तो वे पहले ही काले धन से प्रभावित हैं। प्राथमिक और द्वितीयक दोनों बाजारों में उनकी कीमतों में गिरावट देखने को मिल सकती है। इससे लेनदेन में ऐसे वक्त ठहराव आएगा जब बैंक खुदरा ऋण पर बुरी तरह निर्भर होते जा रहे हैं।

इतना ही नहीं आवास कीमतों में 25 फीसदी की गिरावट भी आवास ऋण डिफॉल्ट में इजाफा करेगी। इसका प्रभाव उपभोक्ताओं के आत्मविश्वास पर भी पड़ेगा। अच्छे मॉनसून और सातवें वेतन आयोग के तहत हुए भुगतान के बल पर सुधार के दौर से गुजर रही अर्थव्यवस्था के लिए यह ठीक नहीं। जहां तक काले धन पर नियंत्रण की बात है, मंगलवार को लिया गया फैसला केवल उस काले धन पर असर डालेगा जो घरों में रखा है। यह परिचालित अथवा भविष्य में उत्पन्न होने वाले काले धन का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। सरकार को नकदी लेनदेन पर करीबी नजर रखनी होगी और सबसे अहम बात यह कि देश में चुनावी फंडिंग पर तवज्जो देने के साथ ही नकदी रहित व्यवस्था निर्मित करनी होगी। अर्थव्यवस्था के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती अनिश्चितता है। बुधवार को बाजार का प्रदर्शन इसकी बानगी है। सेंसेक्स में जबरदस्त उतार-चढ़ाव आया और 339 अंकों की गिरावट पर बंद होने के पहले वह 1700 अंक तक गिरा। अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव के नतीजों, विश्व बाजार पर उनके प्रभाव तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया पर उसके नकारात्मक असर की बात करें तो मध्यम अवधि में मंदी रह सकती है। ऐसे में असल जोखिम परिसंपत्ति बाजार पर द्वितीयक प्रभाव का है। यह बात उपभोक्ताओं के मिजाज और मांग को भी प्रभावित करेगी। अल्पावधि में जीडीपी या मुद्रास्फीति पर असर पड़ सकता है। लेकिन आरबीआई द्वारा ब्याज दर में कटौती का एक रास्ता भी खुलता है। इससे निवेश चक्र की शुरुआत हो सकती है। सरकार को वेतन आयोग के बकाये के समय पर भुगतान पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। साथ ही यह सुनिश्चित करना चाहिए कि नई मुद्रा जल्दी ही बाजार तक पहुंचे ताकि आर्थिक गतिविधि प्रभावित न हों।

Date: 10-11-16

औद्योगिक नीति और अनिवार्य सेवाएं

प्रभावी आपूर्ति और नीतिगत सुविधाएं, इन दोनों का इस्तेमाल अनिवार्य सेवाएं प्रदान करने में किया जाना चाहिए। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं श्याम पोनप्पा

दिल्ली में एक ऐसा कंप्रेसर संचालित टायर पंप तलाश करते हुए मुझे आसानी से कई विकल्प मिल गए जो कार के 12 वोल्ट के सॉकेट में लग सके। इनमें मिशेलिन और गुडइयर तक के उत्पाद शामिल थे। इसके अलावा ताइवान और कोरिया के बने मध्यम मूल्य वाले उत्पाद और चीन के बने सस्ते उत्पाद भी उपलब्ध थे। लेकिन उनमें भारत में बना एक भी नहीं था। आखिर ऐसे इंजीनियरिंग उत्पाद हमारे मुल्क में क्यों नहीं बनते? क्या बाजार अपर्याप्त है या फिर प्रतिस्पर्धा बहुत ज्यादा है? कहीं ऐसा तो नहीं यह देश के विनिर्माण क्षेत्र की समस्या हो? एक बात तो यह है कि तमाम उत्पादक और आपूर्तिकर्ताओं को विनिर्माण और कृषि क्षेत्र के लिए या सेवाओं की आपूर्ति तक के लिए तमाम अड़चनों का सामना करना पड़ता है। कई प्रकार के कर हैं? मंजूरी की धीमी प्रक्रिया आदि भी इनमें देरी करते हैं और लागत लगातार बढ़ती जाती है। बिजली की कमी, पानी की अपर्याप्त व्यवस्था, सीवेज का सही निस्तारण न होना, कचरे का सही प्रबंधन नहीं किया जाना, संचार और लॉजिस्टिक्स के मोर्चे पर भी तमाम दिक्कतें मौजूद हैं। इसके बाद आती है फंड की समस्या, उसकी लागत, कुशल कर्मचारियों की कमी और बाजार तक सीमित पहुंच। प्रश्न यह उठता है कि इनसे निपटने के लिए कौन से कदम उठाए जाने आवश्यक हैं?

हमारी मूलभूत आवश्यकता है औद्योगिक नीति जिसमें अनिवार्य सेवाओं पर ध्यान दिया जाए। ऐसा नीतिगत सुविधाओं और प्रभावी आपूर्ति की मदद से किया जा सकता है। ये अनिवार्य सेवाएं उत्पाद और सेवा आपूर्ति की दृष्टिi से बहुत अहम हैं। इसके अलावा विनिर्माण के लिए भी कौशल, अनुशासन, वित्त और सरकारी खरीद समेत बाजार पहुंच की आवश्यकता होती है। एक मूलभूत प्रश्न किसी औद्योगिक नीति की वैधता से भी ताल्लुक रखता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो विचारधारा आधारित कई ऐसे पूर्वग्रह हैं जो अवधारणाओं में झुकाव की वजह बनते हैं। यह झुकाव किसी खास समय पर स्वीकार्य बातों से प्रभावित हो सकता है। उदाहरण के लिए सन 1950 के दशक का समाजवादी चिंतन, सन 2008 के वित्तीय पतन के पहले तक बाजार की सर्वोच्चता का विचार और उसके बाद आंशिक सुधार, नीति निर्माण में सरकार की भूमिका को मान्यता देना आदि ऐसी ही कुछ बातें हैं। क्या औद्योगिक नीतियां वाकई कारगर साबित होती हैं? या फिर वे भी समस्याओं में और इजाफा ही करती हैं? उदाहरण के लिए विश्व बैंक के मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका क्षेत्र के मुख्य आर्थिक सलाहकार देवराजन औद्योगिक नीतियों की विफलता की तीन वजहें बताते हैं: श्रम नियमन, ऊर्जा सब्सिडी अथवा कर रियायत जैसी विसंगतियां। भारत में इसके चलते आईटी सेवाओं को संसाधनों का आवंटन हुआ जबकि विनिर्माण पीछे रह गया। या फिर सस्ते डीजल के कारण प्रदूषण के स्तर में भारी इजाफा।

लॉबीइंग या विकृत पूंजीवाद का राजनीति पर कब्जा।

विभिन्न क्षेत्रों को तुलनात्मक बढ़त दिलाने का प्रयास बजाय संस्थानों के क्योंकि वे विफल भी हो सकते हैं। आखिर प्रत्येक संस्थान सफल और विफल दोनों हो सकता है। इनमें से आरंभिक दो जहां वैध हैं वहीं तीसरे का सही होना जरूरी नहीं। विभिन्न फर्म प्रोत्साहन के बावजूद विफल हो सकती हैं इसलिए जो भी पहल की जाए उसमें क्षेत्र को ध्यान में रखना चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि अनुकूल नीतियां सफलता की गारंटी नहीं होती हैं हां, वे परिस्थितियां जरूर बना सकती हैं। क्षेत्र आधारित औद्योगिक नीति का लक्ष्य भी यही है। भारत में इस समय बाजार के

समर्थन की आवश्यकता है। सभी विनिर्माताओं के लिए एक वित्तीय तथ्य है सेवा क्षेत्र की गतिविधियों से अल्पावधि का मुनाफा अर्जित करना या फिर न्यूनतम विनिर्माण के साथ कारोबार। आमतौर पर इनकी मदद से तेज प्रतिफल हासिल होता है क्योंकि इसमें उत्पाद विकसित करने और विनिर्माण के वाणिज्यीकरण पर ध्यान दिया जाता है। इसके लिए व्यापक पैमाने, पूंजी तक पहुंच और उत्पादकों के लिए बढिय़ा माहौल की आवश्यकता होती है। इन बातों के बीच भी घरेलू विनिर्माण की गिरती हिस्सेदारी एक व्यापक बढ़ते बाजार के लिए अच्छी बात नहीं है। ऐसे अन्य कारकों में मौजूदा धारणाओं की प्रभाव और राजनीतिक दर्शन मसलन न्यूनतम प्रशासन आदि शामिल हैं और यह भी कि ये इन क्षेत्रों के विकास तथा अन्य गतिविधियों को कैसे प्रभावित करते हैं।

चंद सवाल

सरकार की कुछ पहल ऐसी हैं जिन्होंने लोगों को चकित कर दिया है कि वह जनहित को किस तरह आगे बढ़ा रही है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

शुरुआती चरण के और भावी उद्यमों, उनकी ऑर्डर बुक और आपूर्ति क्षमता की अनदेखी करना जबकि कॉलेज के छात्रों के लिए स्टार्टअप के आयोजन किए जाते हैं। भारत में सेवा आधारित स्टार्टअप के लिए शुरुआती पूंजी है। मसलन सॉफ्टवेयर और आईटी आधारित सेवाएं, एग्रीगेटर आदि। लेकिन उत्पाद विकसित करने या निर्माण के साथ यह बात नहीं है। इसी तरह विनिर्माण या स्थानीय शोध विकास को बाजार तक पहुंचाने के लिए आवश्यक पूंजी नहीं है। सबसे कठिन चरण है सफल शोध एवं विकास को प्रयोगशाला से जमीन पर उतारना और उसे कारोबार में लाना। यहां सहयोग अनुपस्थित है और उसकी सघन आवश्यकता है। विनिर्माण में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। इंस्टीट्यूट फॉर स्टडीज इन इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट के एक अध्ययन के मुताबिक सन 1993 से 2013 तक पांच क्षेत्रों की एफडीआई वाली 309 कंपनियों में अधिकांश वक्त विनिर्माण से शुद्ध आय नकारात्मक रही। इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी में कागज पर सहयोगी नीतियां हैं लेकिन स्थानीय विनिर्माण घरेलू बिक्री में खास अंतर नहीं दिखाता। एक हालिया नकारात्मक घटना यह है कि अगले पांच साल में करीब एक अरब डॉलर से अधिक के एफडीआई का आश्वासन देने वाली विदेशी इकाइयों पर विचार किया जा रहा है। इनके आयात से परे इनको घरेलू विनिर्माता माना जा सकता है। यह तो घरेलू विनिर्माण की अवधारणा के ही खिलाफ है।

अनिवार्य सेवा और चयनित क्षेत्र

सभी सरकारें औद्योगिक नीति को अपनाती हैं। कुछ का ध्यान बुनियादी विकास और नियमन पर होता है जिसमें बाजार हस्तक्षेप कम हो। जबकि अन्य के साथ इसका उलटा होता है। किसी क्षेत्र या गतिविधि को ध्यान देने के लिए चुनने मात्र से उसे अन्य पर वरीयता मिलती है। फिर चाहे मामला गंगा सफाई का हो, स्टार्टअप का, आईटी सेवाओं का या उच्च प्रौद्योगिकी वाले निर्माण का। इससे अनिवार्य सेवाओं की समयबद्ध आपूर्ति की महत्ता भी प्रकट होती है क्योंकि यह सक्षम मंच मुहैया कराती है। बहरहाल, अनिवार्य सेवाओं की आपूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न विभागीय सीमाओं से परे जाकर मौजूदा व्यवहार की जगह नए कदम उठाए जाएं। केंद्र और सभी राज्य सरकारों को इस पर ध्यान देना चाहिए। उच्च तकनीक और रक्षा विनिर्माण जैसे क्षेत्रों को विशेष बढ़ावा देने के लिए चुना जाना चाहिए।

दैनिक भास्कर

Date: 10-11-16

55 लाख लोग हर साल हो रहे प्रदूषण का शिकार

स्मॉग: स्मोक और फॉग का जहरीला कॉकटेल

दिल्ली में फैला स्मॉग बीते एक सप्ताह से देशभर में चर्चा का विषय बना हुआ है। हालात इस हद तक बद्तर हो चुके हैं कि नासा ने बयान जारी कर कहा है कि स्मॉग के चलते दिल्ली की सेटेलाइट से तस्वीरें लेना भी मुश्किल हो चुका है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट में खुलासा किया गया था कि दुनिया में हर साल करीब 55 लाख लोग जहरीली हवा में सांस लेने के चलते अपनी जान गवां देते हैं। औद्योगीकरण की बढ़ती रफ्तार के साथ जो खामियाजे सामने आए हैं, उनमें स्मॉग बहुत बड़ा कारण बनकर उभरा है। बुरी बात यह है कि ज्यादातर लोगों को पता ही नहीं होता कि स्मॉग असल में कितना खतरनाक हो सकता है। इसकी भयावहता को इस बात से समझा जा सकता है कि वर्ष 2013 के आंकड़ों के अनुसार स्मॉग और उससे संबंधित बीमारियों के चलते चीन में 16 लाख लोग मारे गए जबकि भारत का यह आंकड़ा 13 लाख तक पहुंच गया था। डब्ल्यूएचओ के अनुसार वैश्विक स्तर पर मृतकों का आंकड़ा वर्ष 2050 तक डेढ़ गुना ज्यादा हो जाएगा।

भारत-चीन पर बढ़ा है प्रभाव

जर्नल नेचर में प्रकाशित इस रिपोर्ट के मुताबिक स्मॉग का सबसे ज्यादा असर दक्षिण एशियाई और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में पड़ा है। स्माग का प्रभाव गर्मियों के मौसम में ज्यादा घातक साबित होता है। यह पहले ही घोषित किया जा चुका है कि विश्व के सर्वाधिक प्रदूषित 20 शहरों में आधे से ज्यादा भारतीय शहर हैं। पिछले दिनों दिल्ली में लागू ऑड-ईवन पॉलिसी के दौरान सामने आए कई सर्वेक्षण बताते हैं कि वायु प्रदूषण से देश में प्रतिवर्ष होने वाली मौतों के औसत से दिल्ली में 12 फीसदी अधिक मौतें होती हैं। दिल्ली जैसा ही हाल कमोबेश देश के अन्य महानगरों और महानगर बनने की ओर अग्रसर देश के बड़े शहरों का है। अमेरिका की येल यूनिवर्सिटी के अध्ययन के मुताबिक ताजा एनवॉयरमेंट परफॉर्मेंस इंडेक्स (ईपीआई) में 178 देशों में भारत का 155वां स्थान है।यह बड़े कारण-यूं तो दिल्ली में स्मॉग की बड़ी वजह पड़ोसी राज्यों केे किसानों द्वारा जलाए जा रहे कृषि अवशेषों को बताया जा रहा है। लेकिन रुटीन लाइफ में इस्तेमाल होने वाली चीजें भी इसका बड़ा कारण साबित होती हैं।

30.6% धुंध विद्युत उपकरणों के जरिए इलेक्ट्रिक की आपूर्ति कोयला, प्राकृतिक गैसों, खनिज तेल, रेडियोधर्मी पदार्थों द्वारा की जाती है। ताप बिजलीघरों में कोयले, तेल एवं गैस का ईंधन के रूप में प्रयोग होता है। इनकी चिमनियों से निकलने वाली विभिन्न गैसें, कोयले की राख के कण स्मॉग की बड़ी वजह हैं। भारत में 54 फीसदी बिजली उत्पादन कोयला आधारित है।

14.8% फीसदी प्रदूषित हिस्सा परिवहन से कोर्ट ने दिल्ली सरकार को लताड़ते हुए कहा था कि वह वादे के अनुसार पुरानी डीजल गाड़ियों को भी सड़क से हटा नहीं पाई। इसकी वजह है कि परिवहन से होने वाला वायु प्रदूषण स्मॉग पैदा करने वाला बड़ा कारण है। एक अनुमान के अनुसार दिल्ली में 70 लाख से ज्यादा वाहन रोजाना सड़कों पर आवाजाही करते हैं।

19.1% फीसदी हवा में जहर उद्योग और निर्माण से वैश्विक स्तर पर बढ़ते औद्योगीकरण ने अपने साथ चिमनियों से निकलने वाली जहरीली गैसें कार्बन डाईआक्साइड, सल्फर मोनो आक्साइड, धूल के कण, वाष्प कणिकाएं धुंआ आदि भी प्रचुर मात्रा में देने का काम किया है। कंस्ट्रक्शन और निर्माण कार्य धूल की मात्रा बढ़ाने में बड़ी भूमिका निभा रहे हैं।

11.1%हिस्सा कृषि संबंधित वस्तुओं का कृषि कार्यों में रासायनिक उर्वरकों का बढ़ता प्रयोग, फसलों में विभिन्न कीटनाशकों की मात्रा तेजी से बढ़ी है। इन रासायनिक कीटनाशकों के छिड़काव के दौरान ये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वायुमण्डल में प्रविष्ट होकर शुद्ध वायुमण्डल संघटन को खराब करती हैं। अनेक कीटनाशक रसायनों का स्थाई प्रभाव अधिक खतरनाक है।

8.2% घरेलू कामों से बढ़ता तापमान

WHO के मुताबिक 2.9 अरब लोग ऐसे घरों में रहते हैं जहां खाना बनाने और ताप के लिए मुख्य रूप से आग का इस्तेमाल होता है। घरेलू कार्यों जैसे भोजन पकाना, पानी गर्म करना आदि में कोयला, लकड़ी, उपले, मिट्टी का तेल, गैसेस इत्यादि के फलस्वरूप कई विषैली गैसों का निर्माण होता है। परम्परागत ईंधन (लकड़ी, कोयला, उपला) की तुलना में रसोई गैस अधिक प्रदूषण फैलाती है। आधुनिक घरों में रेफ्रीजरेटर, एअर कंडीशनरों से निकलने वाली क्लो रो-फ्लो रो कार्बन गैस ओजोन परत के विनाश के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार है।

क्या है स्मॉग

स्मॉग वायुप्रदूषण का सबसे खतरनाक प्रकार है। यह दो शब्दों स्मोक और फॉग से मिलकर बना है। जब ठंडी हवा किसी भीड़वाली जगह पर पहुंचती है तो स्माॅग बनता है। गर्मियों में जब स्मॉग बनता है तो सबसे बड़ी समस्या होती है ओजोन की। कारों के धुएं में जो नाइट्रोजन ऑक्साइड और हाइड्रोकार्बन्स होते हैं, वे सूर्य की रोशनी में रंगहीन ओजोन गैस में बदल जाते हैं। ओजोन ऊपरी वातावरण में एक रक्षापरत बनाकर हमें सूर्य की हानिकारक किरणों से बचाती है। लेकिन वही ओजोन जब धरती की सतह पर बनने लगे तो यह बेहद ही घातक साबित होती है

फिर याद आया लंदन हादसा

दिल्ली में स्मॉग की बढ़ती भयावहता को लंदन हादसे से जोड़कर देखा जा रहा है। दरअसल 1952 में लंदन स्मॉग का बड़ा शिकार बन चुका है। उस दौरान घटना को 'ग्रेट स्मॉग' या 'बिग स्मोक' का नाम दिया गया था। 5 से 9 दिसंबर तक जबरदस्त वायु प्रदूषण के चलते चार हजार लोग मारे गए थे, जबकि 10 से 12 हजार लोग प्रभावित हुए थे। इस दौरान लंदन के ऊपर स्मॉग की मोटी परत जम गई थी।

ऐसे बनता है हेल्थ का दुश्मन

- स्मॉग की वजह से आपके बाल तेजी से झड़ सकते हैं, साथ ही आपको खांसी और ब्रॉन्काइटिस जैसी खतरनाक बीमारियां पकड़ सकती हैं।
- इसकी वजह से दिल की बीमारी, हार्ट अटैक, त्वचा संबंधी रोग, ब्लड कैंसर और फेफड़ों में इन्फेक्शन के साथ-साथ कैंसर भी हो सकता है।
- स्मॉग आपके इम्यून सिस्टम को भी कमजोर बनाता है।
- आंखों में एलर्जी और नाक, कान, गले में इन्फेक्शन भी हो सकता है।
- सांस लेने में भी दिक्कत होती है और बीपी पेशेंट को ब्रेन स्ट्रोक तक हो सकता है।

दैनिक जागरण

Date: 10-11-16

आजादी और मर्यादा का सवाल

यह अच्छा हुआ कि सूचना प्रसारण मंत्रालय ने एनडीटीवी पर एक दिन की पाबंदी के फैसले को स्थगित कर दिया और सुप्रीम कोर्ट भी इस मामले को सुनने पर राजी हो गया। शीर्ष अदालत चाहे जिस नतीजे पर पहुंचे, लेकिन इस मामले से देश में प्रेस की आजादी के दुरुपयोग और सरकार द्वारा मीडिया के विरुद्ध अवांछनीय हस्तक्षेप, दोनों पर बहस छिड़ गई है। अब गणेश शंकर विद्यार्थी या दुर्गादास जैसे मिशन मोड वाले पत्रकार तो रहे नहीं। आज तो पत्रकारिता बस एक नौकरी होकर रह गई है जिसे सामान्यत: कोई व्यापारी या राजनीतिज्ञ नियंत्रित करता है। एनडीटीवी इंडिया भी इसका अपवाद नहीं। सभी को विदित है कि उस चैनल के मालिक प्रणव रॉय का माक्र्सवादी नेताओं वृंदा करात और प्रकाश करात से पारिवारिक संबंध है और 2009 से उसके वित्तीय पक्ष पर प्रमुख व्यवसायी मुकेश अंबानी का वर्चस्व, लेकिन उसके कारण यदि उस चैनल का झुकाव भाजपा और मोदी सरकार के विरुद्ध हो तो भी उसकी इजाजत भारतीय संविधान देता है। इंग्लैंड के प्रतिष्ठित अखबार मैनचेस्टर गार्डियन के संपादक सीपी स्कॉट ने कहा था कि तथ्य और मूल्य (विचार) पत्रकारिता के दो मूल तत्व हैं। तथ्य अपरिवर्तनीय है, लेकिन विचार स्वतंत्र हैं। इसका आशय है कि तथ्यों को प्रस्तुत करने में पत्रकार स्वतंत्र नहीं हैं। उसे तथ्यों का प्रस्तुतीकरण करने में सामाजिक हित और राष्ट्रीय सुरक्षा सरोकारों को ध्यान में रखना चाहिए। न तो तथ्यों का नग्न प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है, न ही उसे तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में राजनीतिक संस्कृति में आई गिरावट ने संपूर्ण समाज को अपनी चपेट में ले लिया। आज जनता के मन में यह पीड़ा है कि देश में लगभग सभी संस्थाओं में भारी गिरावट आई है और मीडिया भी उससे अछूता नहीं। एनडीटीवी इंडिया को सामान्यत: एक गंभीर चैनल के रूप में देखा जाता है, लेकिन कभी-कभी अति उत्साही पत्रकारों को व्यावसायिक मर्यादाओं और राष्ट्रीय सुरक्षा सरोकारों की अनदेखी करने को प्रेरित कर देती है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि एनडीटीवी इंडिया ने जानबूझकर और पाकिस्तानी आतंकवादियों के हैंडलर्स की मदद करने के उद्देश्य से इस वर्ष जनवरी में पठानकोट में आतंकवादियों के हमले की कोई रिपोर्टिंग की होगी, लेकिन उन पर जाने-अनजाने अपनी लक्ष्मण रेखा को लांघने का आरोप तो लग सकता है। यह सच है कि चैनल के

प्रस्तुतीकरण में जो आपत्तिजनक बातें थीं वे अन्य चैनलों पर भी आईं, लेकिन सरकार द्वारा राष्ट्रीय चैनल एनडीटीवी इंडिया को ही इसका दोषी मानने से यह गलत संदेश गया कि सरकार ने विरोधी विचारधारा के चैनल को दंडित किया है। इससे और चैनलों में यह भय समा गया कि सरकार कहीं इंदिरा गांधी के पदचिन्हों पर तो नहीं जा रही। कहीं यह 1975 की तरह दूसरे आपातकाल की आहट तो नहीं, पर इस प्रकरण से सरकार ने संभवत: मीडिया को यह संदेश देने की कोशिश की है कि रिपोर्टिंग में उनको राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति संवेदनशील होना पड़ेगा। 4 नवंबर 2016 के प्राइम टाइम प्रोग्राम 'जब हम सवाल नहीं पूछ पाएंगे कुछ बता नहीं पाएंगे तो हम करेंगे क्या' में एनडीटीवी ने जनता को मुद्दे से थोड़ा भटकाने की कोशिश जरूर की। स्थगित प्रतिबंध न तो सवाल पूछने पर था, न ही कुछ बताने पर। वह एक विशेष संदर्भ में एक विशेष रिपोर्टिंग को लेकर था और ऐसा प्रतिबंध लगाने का अधिकार सरकार को है। संविधान के द्वारा भाषण और अभिव्यक्ति का जो मौलिक अधिकार हमें प्राप्त है और जो प्रेस की आजादी की आधारशिला है उस पर देश की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशों से मैत्रीपूर्ण संबंध, शांति व्यवस्था और नैतिकता आदि के आधार पर समुचित प्रतिबंध लगाने का अधिकार राज्य को प्राप्त है। कोई अखबार या चैनल यह नहीं कह सकता कि उस पर तब तक कोई कार्रवाई न हो जब तक अन्य सभी पर भी वैसी ही कार्रवाई न की जाए। बड़े और प्रभावी मीडिया संस्थानों पर तो और ज्यादा जिम्मेदारी होती है। हालांकि लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए अच्छा होगा यदि सरकार सेबी या ट्राई मॉडल पर किसी स्वतंत्र मीडिया अभिकरण की स्थापना करे और केवल उसके प्रतिवेदन के आधार पर ही कोई प्रतिबंध लगाए। आज देश में 1790 प्राइवेट और 190 सरकारी चैनल हैं जो दिन-रात सक्रिय रहते हैं। वे लोगों की जरूरत बन गए हैं और इसी का फायदा उठाकर वे चैनल पत्रकारिता कम और व्यवसाय या राजनीति ज्यादा करने लगे हैं। कई बार वे न्यायपालिका की तरह व्यवहार करते हैं। प्रेस की अनेक गतिविधियां मीडिया एथिक्स के प्रतिकूल होती हैं। आखिर उन पर कौन नियंत्रण करेगा? जो मीडिया सबसे हिसाब मांगता है उससे कौन हिसाब मांगेगा? कहने को देश में मीडिया को नियंत्रित करने के लिए 1978 में बनी विधिक संस्था प्रेस काउंसिल और स्वत: नियंता न्यू ब्राडकास्टिंग स्टैंडड्र्स अथॉरिटी हैं, पर जानकारों की मानें तो ये संस्थाएं भी प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर कोई प्रभावी नियंत्रण नहीं लगा पातीं। यह जरूरी है कि मीडिया को अनियंत्रित और उच्छृंखल होने नहीं दिया जा सकता, लेकिन लोकतंत्र में यह भी जरूरी है कि सरकार मीडिया के कामों में कम से कम हस्तक्षेप करे बावजूद इसके कि संविधान उसे ऐसा करने की इजाजत देता है। वैश्वीकरण के बाद से यह और भी जरूरी हो गया है कि विदेशी और शत्रु देश देसी मीडिया को वित्तीय मदद देने की आड़ में देश की राजनीति और सरकार के निर्णयों को प्रभावित न कर सकें। अनेक प्रतिष्ठित चैनलों को तमाम विदेशी स्रोतों से वित्तीय मदद मिलने से इसकी संभावना प्रबल हो जाती है, लेकिन वे चैनल समाज की गंभीर समस्याओं को उठाकर और लोकतंत्र के सिद्धांतों की दुहाई देकर जनता में अपनी साख भी बनाए रहते हैं। भारतीय लोकतंत्र और मीडिया के कॉर्पोरेटाइजेशन में कैसे संतुलन स्थापित किया जाए, यह चुनौती आज हमारे सामने है। सोशल मीडिया इसके समाधान में एक प्रभावी भूमिका निभा रहा है। संभव है मोदी सरकार द्वारा एनडीटीवी इंडिया को ऑफ एयर करने के निर्णय को इसी के चलते स्थगित करना पड़ा हो। हो सकता है सरकार ने किसी रणनीति के तहत संपूर्ण मीडिया को एक पेनाल्टी कार्ड दिखाया हो, जिससे मीडिया सामाजिक और राष्ट्रीय सुरक्षा पर और संवेदनशील होने के लिए आत्ममंथन कर सके। नि:संदेह सरकार और मीडिया में टकराव से दोनों का नुकसान होता है और जनता भी विभाजित होती है, परंतु इस प्रकरण से मीडिया एथिक्स और उत्तरदायित्व तथा मीडिया और सरकार के संबंधों पर एक सार्थक राष्ट्रीय बहस की शुरुआत की जा सकती है, जिससे अंतत: हमारा लोकतंत्र और मजबूत हो सके।

[लेखक डॉ. एके वर्मा, सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स के निदेशक हैं]

दैनिक जागरण

Date: 10-11-16

गुरुदेव गुप्त

काले धन पर कड़ा प्रहार

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने राष्ट्रीय राष्ट्र के नाम संबोधन में जिस तरह काले धन के खिलाफ एक तरह की जंग का ऐलान करते हुए यह कहा कि पांच सौ और एक हजार रुपये के नोट मध्यरात्रि से बंद हो जाएंगे और ये नोट अगले पचास दिन तक ही चलन में रहेंगे उससे काले धन के कारोबारियों, इस तरह के नकली नोटों के जरिये राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचाने और बड़े पैमाने पर आर्थिक भ्रष्टाचार में लिप्त लोगों के खिलाफ एक तरह की गाज ही गिरी है। इस फैसले के बाद देश भर में हलचल मचना स्वाभाविक है, लेकिन इससे अच्छी बात और कुछ नहीं हो सकती कि सबसे ज्यादा हलचल भ्रष्ट तत्वों के बीच ही पैदा हो। इसमें कोई दो राय नहीं कि भ्रष्ट तत्वों को अवाक करने का इससे बेहतर कोई और फैसला नहीं हो सकता। यह एक ऐसा कदम है जो भ्रष्ट तत्वों की कमर तोड़ने में सहायक साबित हो सकता है, लेकिन यह बहुत कुछ इस पर निर्भर करेगा कि आगे अन्य ऐसे क्या कदम उठाए जाते हैं जिनसे काले धन की अर्थव्यवस्था पर प्रभावी और दीर्घकालिक ढंग से लगाम लगे? इस फैसले की व्याख्या अलग-अलग तरीके से हो सकती है, लेकिन इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि इस तरह के फैसलों की महत्ता तभी स्थापित होती है जब वे तब लिए जाएं जब उनके बारे में कोई सोच न रहा हो। यह ठीक है कि पिछले कुछ समय से अर्थात काले धन के कारोबार के खतरनाक स्तर पर पहुंच जाने के बाद से कई लोगों की ओर से यह कहा जा रहा था कि यदि पांच सौ और एक हजार रुपये के नोटों को समाप्त कर दिया जाए तो हालात बदल सकते हैं, लेकिन यह उम्मीद कम ही थी कि भारत सरकार की ओर से ऐसा कोई फैसला लिया जाएगा। ऐसे किसी कदम के कारण फौरी तौर पर जो समस्याएं उत्पन्न होंगी उनसे कोई भी सरकार बचना चाहेगी, लेकिन प्रधानमंत्री के तौर पर नरेंद्र मोदी ने एक बार फिर यह साबित किया कि वह लीक से हटकर अप्रत्याशित फैसला करने का साहस रखते हैं।

प्रधानमंत्री के तौर पर नरेंद्र मोदी ने एक बार फिर यह साबित किया कि वह लीक से हटकर अप्रत्याशित फैसला करने का साहस रखते हैं।

प्रधानमंत्री ने जिस तरह यह स्पष्ट किया कि काले धन की अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा बन गई है उससे कोई असहमत नहीं हो सकता। इससे लगभग सभी लोग अवगत हैं कि देश में किस तरह बड़े पैमाने पर काला धन निर्मित हो रहा है। काला धन दो रूपों में है। एक काला धन वह है जो टैक्स चोरी के जरिये अर्जित किया गया है और दूसरा अवैध तरीके से अर्जित की गई संपत्ति के तौर पर। अवैध तौर-तरीकों में मादक द्रव्यों की तस्करी, गंभीर किस्म के आपराधिक कार्यों में लिप्तता और आतंकी तत्वों से साठगांठ जैसे कृत्य शामिल हैं। अवैध कृत्यों के जरिये बड़े पैमाने पर काला धन जुटाने वाले तत्वों के होश उड़ गए होंगे। ऐसे तत्वों के प्रति कहीं कोई सहानुभूति नहीं हो सकती, लेकिन यह उम्मीद की जाती है कि सरकार ने इसकी पूरी व्यवस्था पहले से कर रखी होगी कि इस अप्रत्याशित फैसले के फलस्वरूप आम आदमी को मुसीबतों का सामना न करना पड़े। यह अच्छी बात है कि सरकार ने यह तैयारी कर रखी है कि बंद किए गए नोटों की जगह पांच सौ और दो हजार रुपये के नए नोट उपलब्ध कराए जाएं। और भी अच्छा होगा कि ऐसे कदम उठाए जाएं जिससे काले धन का कारोबार नए सिरे से न फले-फूले।

जनसत्ता

Date: 09-11-16

ब्रिटेन की प्रधानमंत्री थेरेजा मे का आना

ब्रिटेन की प्रधानमंत्री थेरेजा मे की यूरोप के बाहर यह पहली द्विपक्षीय यात्रा थी। यह संयोग भी हो सकता है। पर खुद ब्रिटेन में उनकी इस यात्रा को जिस तरह बहुत सारी उम्मीदों से जोड़ कर देखा गया उससे यही लगता है कि यह निरा संयोग नहीं रहा होगा। दरअसल, मे की इस यात्रा को यूरोपीय संघ से अलग होने के निर्णय के बाद ब्रिटेन की भविष्य की तैयारियों से अलग करके नहीं देखा जा सकता। ब्रिटेन अभी औपचारिक रूप से यूरोपीय संघ से अलग नहीं हुआ है, इसमें करीब दो साल का वक्त लगेगा। पर दो साल बाद के हालात के लिए उसने कमर कसना शुरू कर दिया है।ब्रिटेन में यह आम सोच है कि वैसी परिस्थितियों में आर्थिक अवसरों में वृद्धि के लिए यह जरूरी कि चीन, भारत और ब्राजील जैसे देशों के साथ कारोबारी रिश्ते बढ़ाए जाएं। यूरोपीय संघ से बाहर नई संभावनाएं टटोलने के क्रम में ब्रिटेन की नजर आस्ट्रेलिया और अमेरिका पर पहले से ही है। जहां तक भारत की बात है, इसके विशाल बाजार में ब्रिटेन अपने लिए काफी नए अवसर देख रहा है। मे की इस यात्रा के साथ-साथ तकनीकी शिखर बैठक का आयोजन भी इसकी गवाही देता है। दूसरी ओर, भारत के लिए भी ब्रिटेन की अहमियत जाहिर है। वह यूरोप में भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार रहा है। इसके अलावा, बाकी यूरोप में भारत के लिए निर्यात बढ़ाने में मददगार भी। इसलिए 2014 में ही प्रधानमंत्री मोदी ने ऊर्जा, रक्षा और चिकित्सा समेत अनेक क्षेत्रों में आपसी सहयोग बढ़ाने में दिलचस्पी दिखाई थी। पर ब्रिटेन की सख्त वीजा तथा आव्रजन नीति के कारण वह पहल परवान नहीं चढ़ पाई। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि मे से हुई वार्ता में मोदी ने ब्रिटेन की वीजा नीति के कारण आने वाली मुश्किलों का जिक्र किया।

मे ने कारोबारियों के लिए तो वीजा नीति को आसान बनाने का भरोसा दिलाया है, पर भारतीय छात्रों की बाबत उन्होंने नरमी का कोई संकेत नहीं दिया। असल में ब्रिटेन की शिकायत है कि अध्ययन-वीजा पर वहां आने वाले बहुत-से लोग वीजा की अवधि पूरी होने के बाद भी वहां से जाना नहीं चाहते। द्विपक्षीय वार्ता में आपसी कारोबार बढ़ाने के अलावा एक और अहम मुद्दा प्रत्यर्पण का था। भारत ने जहां शराब कारोबारी विजय माल्या, आइपीएल के पूर्व प्रमुख ललित मोदी और अगस्ता-वेस्टलैंड सौदे के आरोपी क्रिस्टीन मिशेल समेत साठ वांछितों की सूची प्रत्यर्पण के लिए सौंपी हैं, वहीं ब्रिटेन ने भी सत्रह लोगों की सूची भारत को दी है जो वहां वांछित हैं।

आतंकवाद के खिलाफ भारत के साथ सहयोग का इरादा जताते हुए ब्रिटेन ने दो टूक कहा है कि किसी आतंकवादी को शहीद कह कर महिमामंडित नहीं किया जाना चाहिए। समझा जा सकता है कि इशारा बुरहान वानी की तरफ होगा, जिसे पाकिस्तान ने 'शहीद' घोषित किया था। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सीट की दावेदारी और एनएसजी की सदस्यता के मुद्दों पर ब्रिटेन पहले से ही भारत का समर्थन करता आ रहा है। आपसी व्यापार को एक महत्त्वाकांक्षी मुकाम तक पहुंचाने के दोनों देशों के इरादे की झलक एफटीए यानी मुक्त व्यापार समझौते को लेकर बनी रजामंदी से मिल जाती है। अलबत्ता जब तक ब्रिटेन औपचारिक रूप से यूरोपीय संघ से बाहर नहीं आ जाता, इस तरह की सहमति सैद्धांतिक स्तर पर ही रहेगी। पर इससे दो साल बाद की नई संभावनाओं का अंदाजा तो लगाया ही जा सकता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 09-11-16

जिन्न फिर बोतल से बाहर

दुनिया में जब भी सैनिक-असैनिक कर्मचारी मांग करते हैं तो शत-प्रतिशत सरकारें मान लें, यह जरूरी नहीं। जो मूल बातें थीं उन्हें सरकार ने मान लिया और उसके साथ जुड़े कुछ बिंदुओं को छोड़ दिया तो कुछ का फैसला न्यायिक समिति को समीक्षा के लिए सुपुर्द कर दिया। इसमें दो राय नहीं कि एक ही रैंक से सेवानिवृत्त होने वाले सैनिकों को अलग-अलग प्रकार का वेतन मिलना गलत था

पूर्व सैनिक की आत्महत्या के बाद "वन रैंक वन पेंशन' का मामला फिर सुर्खियों में आ गया है। दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर झूठ बोलने का आरोप लगा रहे हैं तो कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी भी कह रहे हैं कि "वन रैंक वन पेंशन' लागू हुआ ही नहीं है। राहुल के साथ कुछ पूर्व सैनिकों की बैठक हुई और वह जब बैठक के बाद बयान दे रहे थे तो उनके साथ अनेक पूर्व सैनिक भी थे। जाहिर है, जो लोग पूर्व सैनिकों के संघर्ष पर नजर रखे हुए हैं, वे जानते हैं कि ये आरोप सच नहीं है। अगर "वन रैंक वन पेंशन' लागू ही नहीं हुआ तो फिर बजट में अरुण जेटली ने 54 हजार 500 करोड़ की राशि कुल पेंशन पर आवंटित करने की घोषणा क्यों की? एक सैनिक की आत्महत्या के दुखद प्रकरण को घटिया राजनीतिक मोड़ देने की कोशिश हो रही है और उसी क्रम में इस तरह के निराधार आरोप लगाए जा रहे हैं। वास्तव में उस आत्महत्या के बाद पेंशन में व्याप्त विसंगतियों पर बात होनी चाहिए, अभी तक जो कुछ नहीं हो पाया उसे करने का दबाव बनाया जाना चाहिए। उसकी जगह आप यह आरोप लगा दें कि कुछ हुआ ही नहीं तो कोई विवेकशील व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं करेगा। सच यह है कि अभी तक "वन रैंक वन पेंशन' के तहत 5,507.47 करोड़ रु पये दिए जा चुके हैं। इस योजना का कुल 20 लाख 63 हजार 763 पूर्व सैनिकों को इसका लाभ मिला। जो सूचना है कि उसके अनुसार 19 लाख 12 हजार 520 पूर्व सैनिक पेंशनधारियों को इसका लाभ मिल चुका है। कुल 1 लाख 50 हजार 313 मामले अभी बाकी है क्योंकि उनमें कागजातों की समस्या है। किंतु सरकार ने घोषणा कर दिया है कि अगर कागजात नहीं मिले तो भी उनको पेंशन दिया जाएगा और उसके लिए एक शपथपत्र लिया जाएगा। इसका कारण यह है कि उन सैनिकों के कागजात सरकारी रिकॉर्ड में भी नहीं मिल रहे हैं। तो उनके शपथपत्र को ही उनका कागजात मान लिया जाएगा। "वन रैंक वन पेंशन' की मांग का एक ही मतलब था कि कोई फौज में किसी भी वक्त सेवानिवृत्त हो, वह अपने पद के हिसाब से समान पेंशन का हकदार रहेगा। नरेन्द्र मोदी सरकार ने 5 सितम्बर 2015 को "वन रैंक वन पेंशन' का एलान कर दिया। 1 जुलाई 2014 से इसे लागू किया गया। एरियर्स यानी पूर्व बकाया राशि के लिए 12 हजार करोड़ रु पये देने थे। इसमें रास्ता यह निकला कि एरियर छह-छह महीने में चार किश्तों में दिया जाए। यह प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि अभी तक सारे पूर्व सैनिक संतुष्ट क्यों नहीं हैं? आखिर जंतर मंतर पर अभी भी धरना क्यों चल रहा है? सरकार की घोषणा के बाद तो धरना समाप्त हो जाना चाहिए था। वास्तव में कुछ बिंदुओं पर सरकार के साथ इनका मतभेद है। पूर्व सैनिकों ने "वन रैंक वन पेंशन' के लिए आधार वर्ष 2013 बनाने की मांग की थी, जबकि सरकार ने 2015 को आधार वर्ष बनाया है। तो इनकी मांग अभी भी 2013 को आधार वर्ष बनाने की है। दूसरे, सरकार ने 2013 तक के न्यूनतम और अधिकतम पेंशन का औसत निकाल कर "वन रैंक वन पेंशन' देना निश्चित किया है। पूर्व सैनिकों की मांग है कि ज्यादा पेंशन को आधार माना जाए। तीसरे, सरकार ने हर पांच साल पर इसकी समीक्षा का निर्णय किया है। पूर्व सैनिकों का कहना है कि सलाना या दो साल पर इसकी समीक्षा हो। सरकार का तर्क है कि कोई 100-50 लोगों की बात

नहीं है, 20 लाख से ज्यादा लोगों की बात है। इसलिए 5 साल से कम पर समीक्षा संभव नहीं होगा। वैसे भी नागरिक सेवा में 10 वर्ष पर वेतन आयोग के गठन की व्यवस्था है। सरकार कह रही है कि सैनिकों को पांच वर्ष पर समीक्षा को मान लेना चाहिए। सरकार ने यह साफ किया है कि "वन रैंक, वन पेंशन' का फायदा वीआरएस लेने वाले सैनिकों को नहीं मिलेगा। सेना में वीआरएस की व्यवस्था नहीं है, लेकिन बहुत सारे लोग प्री मैच्योर रिटायरमेंट के पूर्व ही निवृत्ति ले लेते हैं। इस विषय पर भी मतभेद हैं। क्या इन मतभेदों का अर्थ यह है कि "वन रैंक, वन पेंशन' लागू हुआ ही नहीं है? कतई नहीं। सच कहा जाए तो सरकार ने इनकी मुख्य मांगे मान ली हैं और चार-पांच बिंदुओं पर अभी सहमति होना बाकी है। उसके लिए भी सरकार ने न्यायमूर्ति एल. नरसिम्हा रेड्डी की अध्यक्षता में एक समिति गठित कर दी गई थी। अपनी रिपोर्ट बनाने के पहले रेड्डी ने पूर्व सैनिकों से सीधा संपर्क किया। 20 शहरों में जन सुनवाई करके सबका पक्ष लिया। कुल 704 ज्ञापन समिति को प्राप्त हुए। उनने पिछले 26 अक्टूबर को अपनी रिपोर्ट सौंप दी है। जो रिपोर्ट उनने सौंपी है, उसके आधार पर सरकार द्वारा उठाए जाने वाले कदमों की प्रतीक्षा करनी चाहिए। लेकिन जिनको राजनीति करनी है, उनके लिए सच और तय का कोई अर्थ नहीं होता। आत्महत्या करने वाले सैनिक के परिवार से सबकी सहानुभूति है। किसी कारण से कोई आत्महत्या करे, उसके परिवार के लिए यह असहनीय क्षति होती है। किंतु उस पूर्व सैनिक की समस्या अपने बैंक से थी। बैंक की गलती से उनको बढ़ा हुआ पेंशन नहीं मिल रहा था। यानी वह मामला "वन रैंक वन पेंशन' से सीधा जुड़ा हुआ नहीं था। दुनिया में जब भी सैनिक-असैनिक कर्मचारी मांग करते हैं तो शत-प्रतिशत सरकारें मान लें, यह जरूरी नहीं। जो मूल बातें थीं उन्हें सरकार ने मान लिया और उसके साथ जुड़े कुछ बिंदुओं को छोड़ दिया तो कुछ का फैसला न्यायिक समिति को समीक्षा के लिए सुपुर्द कर दिया। इसमें दो राय नहीं कि एक ही रैंक से सेवानिवृत्त होने वाले सैनिकों को अलग-अलग प्रकार का वेतन मिलना गलत था। कोई 15 वर्ष पहले सेवानिवृत्त हुआ तो उसे उस समय के अनुसार आप पेंशन दें और जो आज हो रहा है उसे आज के अनुसार यह न्यायसंगत नहीं था। उसे दुरुस्त किया गया। लेकिन जो अभी शंख बजा रहे हैं, उनकी सरकार ने क्या किया इसे भी तो याद रखना चाहिए। 1971 के बाद से यह मांग उठी थी। 44वें साल में जाकर यह मांग पूरी होती है। यह कैसा राजनीतिक न्याय है? तो शोर मचाने से पहले अपने गिरेबान में भी झांकना जरूरी है। 10 वर्ष की यूपीए सरकार में तो यह मांग काफी जोर-शोर से उठी थी। राज्य सभा सदस्य राजीव चंद्रशेखर ने कहा उन्होंने तीन-तीन बार पत्र लिखा। मगर तीनों बार नकारात्मक जवाब मिला। कहने का तात्पर्य यह है कि "वन रैंक वन पेंशन' पर हो रही राजनीति असत्य और आधारहीनता पर खड़ी है। बेशक, जिनका पेंशन अभी तक ठीक नहीं हुआ या संपूर्ण मांग मानने की लड़ाई लड़ने वाले कुछ पूर्व सैनिक असंतुष्ट हैं, लेकिन लाखों की संख्या में ऐसे पूर्व सैनिक हैं, जो संतुष्ट भी हैं।

अवधेश कुमार